अध्याय - अष्टादश

राजधर्म

(हरिगीतिका)

दृगवारिप्रक्षालितचरण,
खोले नयन गांगेय[1] ने ।
पाया कि धारा रूपता,
धारी सकल अभिधेय[2] ने ।
धृतशीष पगयुग पर विकल,
अवरूद्ध जिनका कण्ठ था ।
थे पार्थ या करूणा जलधि,
ही उमड़ता उपकण्ठ[3] था ॥1॥

(गीतिका)

भीष्म बोले धैर्य धारो
हे युधिष्ठिर शांत हो ।
शीलभूषण तुम विविध गुण
के प्रशस्त निशान्त[4] हो ।
बैरिप्रति भी हो करूण तुम,
लोकमन के कान्त हो ।
हो चुकी अब धर्म की जय
किसलिए उद्भ्रारन्त हो ॥2॥

(सरसी)

तव सवाष्प[5] बोले वे धर्मज अविरल[6] बहता नीर ।
इधर बचे हैं पांच विपक्षी तीन शेष बस वीर ॥3॥

(रूपमाला)

मेदिनी[7] ने मेदिनी का, फिर धरा है रूप ।
पर नहीं मधु मार उपरत हैं हुए सुरभूप[8] ।
रक्त मज्जा मांस मेदस अस्थि का विस्तार ।
मूढ़ मानव कृत हुआ है बन्धु का संहार ॥4॥
यत्नपोषित[9] गज सुपालित, वाजि[10] खाकर बाण ।
पडे अगणित फूलते शव, गन्धमय गत प्रारण ।
घोर मानव के अहं से, त्राण पाता कौन ।
तमाच्छादन दिया मृतकों, को निषा ने मौन ॥5॥

1. भीष्म	4. घर, निवास	7. पृथ्वी	10. घोड़े
2. कहने योग्य विषय	5. अश्रु सहित	8. विष्णु	
3. समीप	6. लगातार	9. प्रयास पूर्वक पाले गए	

(रूपमाला)

विषमरणहत हो मनुज के, जीव बहु व्योमस्थ[1] ।
ध्वस्तजीवननीव भू पर, हुए ज्यों प्रकृतिस्थ ।
देखते है दीप्त नयनों, से धरा नि:सार ।
जहां मानव हो गया निज, दुष्कृतों[2] से भार ॥6॥

बाहु गजकरवत सबल है, छिन्न धृत केयूर[3] ।
पडे भू पर समणि हेमज[4], मुकुट होकर चूर ।
नमित होते थे न जिनके, स्वबलगर्वित शीश ।
अवनिगत[5] हयटापमर्दित, पड़े है अवनीश[6] ॥7॥

कण्ठ कर्तन क्षम पड़ी है, कहीं पर करवाल[7] ।
कहीं पर आघातरोधी, है पड़ी दृढ़ ढाल ।
छिन्न दण्ड गढ़ा हुआ है, कहीं वपु में शूल ।
कहीं कर्तितशीर्ष[8] कोई, रहा रथ से झूल ॥8॥

व्यर्थ क्यों लहरा रहे ध्वज, रथारोपित वायु ।
शून्य स्यन्दन[9] है गया, नरवीर हो अल्पायु ।
पडे बिखरे समर भू पर, अनगिनत रथ चक्र ।
थम गया मानो सृजन ही, दृष्टि यम की वक्र ॥9॥

पंकलोहितक्लिन्न है जो, आज भूगत भाल ।
था कभी पाटीरचर्चित[10], रचितबहुनयजाल ।
मृत्तिका का मृत्तिका से, मिलन ही है सत्य ।
किन्तु जाता जगत से नर, रह अनवगततथ्य[11] ॥10॥

खींचता कोई मनुज निज, वक्षगतफल बाण ।
वेदनाशमनार्थ धरता, कण्ठ पर सुकृपाण ।
और कोई मांगता है, नीर नर म्रियमाण[12] ।
कहां जन्में थे कहां पर, त्यागते निज प्राण ॥11।

अर्ध मूर्च्छित वीर कोई स्वजन से ज्यों बात ।
कर रहा ज्यों देखता हो, स्वप्न सुख से रात ।
चेतना पर छा रहा तम, रिस रहे हैं घाव ।
काल नद में निमज्जित बस, हो चली वय नाव ॥12॥

1.आकाश में स्थित	5. पृथ्वी पर पड़े हुए	9. रथ
2. पापों	6. राजा	10. चंदन लगा हुआ
3. भुजा पर पहने जाने वाला आभूषण	7. तलवार	11. जिसे वास्तविकता ज्ञात नहीं है
4. स्वर्ण्ण का बना हुआ	8. कटे हुए सिर वाला	12. मरणासन्न

(रूपमाला)

रह गया बस बोध इतना, हो गये निर्भार ।
घना तम फिर, थम गया सब, वेदना व्यापार ।
शिविर में जलती मशालें, पर तिमिर अनिवार्य[1] ।
सकलदृष्यावरणकारी, हो गया कृतकार्य ॥13॥

सकल मानस कालिमा ज्यों, निकलकर चहुँओर ।
छा गयी बनकर सखी सी, तमिस्त्रा[2] की घोर ।
रूदन करते या कि हैं ये, प्रीत बहु गोमायु[3] ।
भीत आयुधघोष से ये, मानते क्षपितायु[4] ॥14॥

अस्त्रक्षेपज[5] समरभू में, कहीं कुपित कृषानु[6] ।
जल रहा अब तक उठाता, तुंग धूम्रज सानु[7] ।
वीत वह्निजभीति आते, पिषितलुब्ध[8] तरक्षु[9] ।
चर्वणापर[10] सास्थि भुज उरू, सरस मानों इक्षु ॥15॥

यदि यही है युक्ति मति बल वीर्य का परिणाम ।
यदि यही है अभ्युदय का आखिरी विश्राम ॥
गयी निर्णय शक्ति क्या अब लौह पावक हाथ ।
नियतपरिभव[11] हुई नरमति, दीन हीन अनाथ ॥16॥

(सरसी)

लीलायुक्तगमनअनुगुंजित, घंटाध्वनि श्रुतिरम्य[12] ।
शमित हुई गज पड़े विगत असु[13], नर के पाप अक्षम्य ॥
यदा कदा बज उठता घण्टा, सह वय[14] चरणाघात ।
जो निमग्न मृतदेहभोग में, करते चंचु निपात ॥17॥

जो करेणु[15] पर प्रीतिप्रवर्धक, करता वारिफुहार ।
तरूणतरूत्पाटनक्षम जो था, बहुबल का आधार ॥
स्वामिनमन में उठता नभ में, जो सुपुष्ट अति शण्ड ।
अस्त्रछिन्न वह पड़ा महोरग[16], जैसे खण्डितमुण्ड ॥18॥

1. जिसे दूर न किया जा सके	9. लकड़बग्घा
2. रात्रि	10. चबाने में लगे हुए
3. गीदड़	11. जिसकी पराजय निष्चित है ।
4. जिसकी आयु समाप्त	12. सुनने में सुखद हो गयी है ।
5. अस्त्रों के प्रक्षेप से उत्पन्न	13. गतप्राण
6. अग्नि	14. पक्षी
7. शिखर	15. हथिनी
8. मांस के लोभी	16. विशाल सर्प

बाणशूलजा व्यथा सहन कर, भी बढ़ते थे धीर।
निजदलनरगण दबा पड़े हैं, वही गजेन्द्रशरीर॥
छिपकर बाण अदृश्य चलाता, विषमय कालकिरात।
पक्व फलों से गिर जाते हैं, भूतों के वपुव्रात 1॥19॥

एक साथ रथ जुतेयग्म में, एक अश्व असुहीन 2।
विकल सखा है विवश हेषृणा3 ,करता होकर दीन।
सहने को हैं विवश यंत्रणा, हाय अनघ4 पशु मौन।
किसने ये व्रण5 दिए वेदना, स्रोत नरेतर6 कौन॥20॥

ढो-ढो कर लाये बहु आयुध, क्या वे वृषभ7 वलिष्ठ।
दु:खी न होंगें देख महाक्षय, स्वामी के बहुकष्ट।
करते कृष्ट8 रहे जो भू को, विपुल उगाने शस्य 9।
कटी फसल वत मनुज देखते, विषम जात वैरस्य 10॥21।

देख विपुल आहार पृथित बहु पृथ्वी पर क्रव्याद 11।
विगतस्पर्ध12 अद्वन्द्व13 भोजरत, सहचरयुत अविषाद।
पुष्कलता14 हो या विपन्नता, रहता मनुज सद्वेष।
यही भिन्नता क्या न बनाती, उसको जीव विशेष॥22॥

बना चुके अगणित रेखाएं, भूतल पर रथचक्र।
जीवन रेखाएं करस्थ ही, उतरीं भूपर वक्र।
या कि धरामानस पर पड़ते, गहरे क्षय संस्कार।
पुन: प्रवर्तित आयति15 में हो, शायद क्षय व्यापार॥23॥

सदा अदर्शित पृष्ठ समर में, दिखते उनके पृष्ठ 16।
वीर अधोमुख चूम रहे ज्यों, भूजाया17 आकृष्ट॥24॥

है गंतव्य गगन इंगित, यह करते ईशादण्ड 18।
कहते हैं उशितव्य19 नहीं अब, यह भारत का खण्ड।
हो शतांग20 सार्थक यह संज्ञा, करते विपुल शतांग।
धन्य गये जो स्वर्ग बचे हैं विकलमना विकलांग॥25॥

1. शरीर समूह	11. कच्चा मांस खाने वाला
2. प्राणहीन	12. बिना प्रतिद्वन्दिता के
3. हिनहिनाहट	13. निर्द्वन्द्व, निश्चिंत
4. निष्पाप	14. विपुलता, प्रचुरता
5. घाव	15. भविष्य
6. मनुष्य से भिन्न	16. पीठ
7. बैल	17. पृथ्वी रूपी पत्नी
8. जोता हुआ	18. रथ दण्ड
9. धान्य	19. निवास करने योग्य
10. बैरभाव	20. सौ अंगोवाला, रथ

(रूपमाला)

श्वेतहरियुत[1] अब बचा है, मात्र नन्दीघोष[2] ।
स्वयं हरिचालित जहाँ पर, अफल था यमरोष ।
खिन्नवसु[3] जाते अलक्षित, वसु सजव[4] हरिदष्व[5] ।
क्या प्रकाषन योग्य है यह, व्रणजुगुप्सित विष्व ॥26॥

सांकता[6] आरोप शषधर[7], पर नहीं अब योग्य ।
मेदिनी अब है कलंकित, खो चुकी आरोग्य ॥27॥

(सरसी)

पुनरूज्जीवन में असफलता से, ज्यों होकर खिन्न ।
आज समुत्सुक हुआ सुधाकर[8], रखे नाम कुछ भिन्न ।
छिपता पुन: पुन: अभ्रों[9] में, द्रवितान्तर[10] सा सोम ।
देख दुखार्त धरा को लगता, रोषारूण[11] सा भौम[12] ॥28॥

कौन मना सकता है मानव, ऐसी जय पर हर्ष ।
रूधिरमग्न हो गया समूचा, जिसमें भारतवर्ष ॥29॥

यह जय नहीं पराजय ही है, नरता का अपकर्ष[13] ।
किसके उर में नहीं उठेगें, करूणा घणृ अमर्ष[14] ॥30॥

कल इतिहास करेगा निर्णय, कर निरपेक्ष विमर्ष ।
धर्मराजनामाख्य व्यक्ति का, क्या था यह आदर्ष ॥31॥

(सवैया)

रण का इतना परिणाम सुघोर
पितामह ज्ञात कहीं यदि होता ।
करता सुख से वनवास सुदीर्घ
कुटीर बना वसुधा पर सोता ।
सहता वनिता विष बाण अक्षुब्ध
जनोदित[15] व्यंग न धीरज खोता ।
मुनिसंगज ज्ञान प्रसून सयत्न
विमुक्ति प्रदायक पूर्ण संजोता ॥32॥

1. सफेद घोड़ो वाला	6. सकलंकता	11. क्रोधावेश से लाल
2. अर्जुन के रथ का नाम	7. चंद्रमा	12. मंगल ग्रह
3. मलिन कान्ति	8. चंद्रमा	13. अवनति
4. वेग युक्त	9. बादलों में	14. क्रोध
5. सूर्य	10. करूणा युक्त हृदय वाला	15. लोगों द्वारा कहे गए

सब बन्धु गए सब मित्र गए
गुरू भी न रहे जगती[1] यह सूनी ।
निज अग्रज[2] का वध घोर किया
यह जान व्यथा उर की अब दूनी ।
नव संतति लुप्त अशेष हुई
लगती वसुधा जलती बस धूनी ।
अब कौन यहां परिताप रहा
सहना मुझको विपदा कटु छूनी ॥33॥

(सरसी)

धर्मराज को राजधर्म का, करने गुरू उपदेश।
हरने रणपरिणतिज[3] अरंतुद[4], पृथासूनु का क्लेश ॥34॥

तनुजा[5] अतनुवेदना[6] को सह, शरशायी कुरू ज्येष्ठ ।
कहने लगे न कातरता है, तुम्हें उचित नरश्रेष्ठ ॥35॥

परिणीता हो शक्ति न जबतक, दृढ़ विवेक के साथ ।
धर्म जनक विरहित नय बालक, फिरता यहाँ अनाथ ॥36॥

नित विकास पाती जनपद में, केवल घोर अशांतिं ।
विप्लव[7] परंपरा को सहती, प्रजा विवश हतकांति ॥37॥

लोभ और छल हिंसा प्रेरित, जिसके कार्यकलाप ।
वह अवशोषण यंत्र न शासन, धरणी का अभिशाप ॥38॥

तेरा रूदन प्रमाणित करता, मानवता की नींव ।
नहीं हिला पाए रणदुर्मद, निजबलविक्रमक्षीव[8] ॥39॥

अब भी सस्कृतिसरु सरिता में, मानवता का नीर ।
प्रवहमान है अश्रु तुम्हारे, द्योतित करते धीर ॥40॥

यहाँ विजेता भी रोता है, यह भारत का भाग्य ।
मात्र यहीं पर आ सकता है, नृप को भी वैराग्य ॥41॥

बनो पुरंदर[9] असुरविजेता, विक्रमार्क शतमन्यु[10] ।
वज्रायुधधर बनो धरागत, अपर इंद्र गतमन्यु[11] ॥42॥

1. पृथ्वी	7. उपद्रव
2. कर्ण	8. बल तथा वीरता के मद में चूर
3. रण के परिणाम से उत्पन्न	9. शत्रु के दुर्ग/नगर को नष्ट करने वाला
4. मर्मभेदी	10. सैकड़ों यज्ञ करने वाला
5. शरीर से उत्पन्न	11. दैन्य का क्रोध से रहित
6. भारी वेदना	

(सरसी)

तुम सहस्त्र लोचनता[1] कर लो, युक्तायुतचर[2] प्राप्त ।
पर हों सदा तुम्हारे नायक, श्रुतिप्रतिमासम[3] आप्त[4] ॥43॥

जो उदात्ताता तुम्हें मिली है, सुत अलोकसामान्य[5] ।
आलोकाकर्षित घेरेंगे, तुमको नृपति वदान्य[6] ॥44॥

तवगुणकर्षित नरपतिमंडल, स्वत: रहेगा वश्य ।
पर विश्रब्धता[7] पोषण तुमको, सतत् विधेय अवश्य ॥46॥

परामर्श भी बन जाएगा, तब उनको आदेश ।
स्वत: स्फूर्त तत्परताधारी, होंगे सकल नरेश ॥47॥

परिमलवती सुमनमालावत, तव आज्ञा शिर धार ।
नृप मानेंगे स्वीकृतसेवा, में भी बहु उपकार ॥48॥

अपराजितगु[8] सदा रहता है, अपराजितगु[9] पृथाज ।
अजितात्मा के लिए न संभव, इस जगती पर राज ॥49॥

अनुशासन आरंभ स्वयं से, होता पाण्डवजात ।
तब कुटुंब में राजपुरूषगण, में होता प्रतिभात ॥50॥

(सार छंद)

विनयापरिचित कैसे विनयी
कर सकता है जन को ।
कैसे भला लिप्सु कर सकता
रक्षित जन के धन को ।
जो नृप स्वयं विषमशरपीड़ित[10]
मान कहाँ नारी का ।
रक्षित रख सकता कुपात्र हित
क्या ऋत अधिकारी का ॥51॥

1. हजारों नेत्र वाला होने का भाव	6. वाग्मी, कुशल वक्ता
2. हजारों गुप्तचरों को नियुक्त करने वाला	7. विश्वस्तता, निष्चिन्तता
3. वेद की मूर्ति	8. जिसने इंद्रियों को नहीं जीता है
4. ज्ञानी	9. जिसने पृथ्वी को नहीं जीता है ।
5. असाधारण	10. कामदेव के बाणों से पीड़ित

(सार)

यही दिवंगत आत्माओं को
होगा वत्स सुतर्पण ।
तुम कर दो निज सकलसुखों का
जन सुख हेतु समर्पण ।
इसको ही धर्मज तुम मानो
सेवा या प्रायष्चित ।
कर्मयोग भी मुक्ति प्रदाता
कहते सकल विपश्चित[1] ॥52॥
नित्य चढ़ाते रहना तुम जल
उस पीपल पर जाकर ।
जिसकी छाया में बैठा हूँ
प्राय: ध्यान लगाकर ।
जो रह जाते नृपति सौध[2] की
हेम[3] प्रभा के बंदी ।
भार समान समझ खाती है
उनकी ही आसन्दी[4] ॥53॥

ज्ञान क्रिया का और भोग का
यदि न संतुलन आया ।
प्रतियोगी हो विषम डालते
ये जनपद पर छाया ।
ज्ञानी का वैराग्य प्रबल हो
क्रिया मंद होती है ।
उद्यम विमुख देख अरि घिरते
शंकित श्री रोती है ॥54॥

(द्रुतविलंबित)

विगत भीति करो तुम लोक को ।
विभव संयुत[5] हो कुरू की धरा ।
यदपि दुश्कर है नव सर्जना[6] ।
इस महोद्यम का न विकल्प है ॥55॥

1. विद्वान	4. राजसिंहासन
2. राजभवन	5. वैभव से युक्त
3. स्वर्ण	6. सृजन निर्माण

प्रयत[1] नीति विशारद मंत्रि से ।
कृत निगूढ़[2] विमर्श विधेय का[3] ।
सकल साधन योजित जो करे ।
अनुचरी[4] उसकी सुत, सिद्धि है ॥56॥

(सार)
सुकर[5] युद्ध की बातें करना
रण भी बहुत सरल है ।
पान सुदुश्कर होता पाण्डव
रण परिणाम गरल[6] है ।
भंजन होता मात्र क्षणों में
चलता शक्ति प्रभंजन[7] ।
किन्तु पुनर्सर्जना मांगती
उद्यम चित्त निरंजन[8] ॥57॥

उपधि[9] केन्द्र जब बन जाते हैं
दुर्ग नीति की कारा[10] ।
उस दिन से ही पुत्र जानलो
तुम जनपद को हारा ।
बने स्वजन ही शत्रु क्षेम फिर
होता कहां सुनिश्चित ।
अत: आन्तरिक गूढ़ शत्रु क्षय
करते प्रथम विपश्चित[11] ॥58॥

भारत[12] समर हेतु हे भारत[13]
तुम निज को अपराधी ।
मान रहे क्यों तुमने टाली
वर्षों तक यह आंधी ।
तुम शम[14] पूजक हुए विमानित
बार - बार दुर्जन से ।
रण में किया प्रवेश विवश हो
तुमने बड़े कुमन से ॥59॥

1. पवित्र	8. निर्मल
2. छिपा हुआ, गुप्त	9. छल , बहाना, धोखा
3. कर्तव्य	10. कारागृह
4. सेविका	11. विद्वान
5. सरल	12. महाभारत, कुरूक्षेत्र
6. विष	13. हे भरत वंशी
7. तूफान, झंझावात	14. शांति

यदि टालता मनुज कटु निर्णय
बढ़ती विपदा भावी ।
इसी लिए यह युद्ध हुआ था
तात अवश्यंभावी ।
द्यूत भवन को ही कर देते
यदि रण क्षेत्र अचानक ।
तो न देखना पड़ता हमको
यह कुरू क्षेत्र भयानक ॥60॥
होता यदि प्रतिकार नहीं कुरू
प्रारम्भिक दुष्कृति[1] का ।
बढ़ता जाता साहस शठ का
कटुतर और निकृति[2] का ।
कृती वही करदे उन्मूलित
विषतरू को लघुवय में ।
कष्ट दीर्घसूत्री[3] बहु पाते
या मृदु जो निश्चय में ॥61॥
हों कर्तव्य सुज्ञात मनुज को
निज अधिकार सजगता ।
नपृ में राजित उभय तिग्मता[4]
और प्रकाम[5] सुभगता ।
पात्र-कुपात्र विवेचनीय है
विनय और विक्रम के ।
नहीं सकल जन वश्य एक ही
स्वानुष्ठित[6] उपक्रम के ॥62॥
भोग चुके भूयसी[7] अरतिप्रद[8]
धर्मराज विपदा को ।
क्र अभिसिक्त सुनीति करो नित
सेवित भूतिप्रदा[9] को ।
लाये बहु दुर्भाग्य फैंक दो
तुम दुरन्त[10] पाशों को ।
छल को मिटा सुकृत[11] से जीतो
जन के विश्वासों को ॥63॥

1. पाप , अपराध	6. भली प्रकार किया गया	11. पुण्य , शुभ कर्म
2. अपकार	7. बहुत बड़ी विशाल, अतिमात्र	
3. टालने वाला	8. पीड़ादायक	
4. तीक्ष्णता	9. कल्याण दायिनी	
5. प्रभूत , प्रचुर	10. बुरे परिणाम वाले	

(सार छन्द)

रजोगुणोत्थित अधिक सक्रियता,
रण प्रियता बन जाती ।
अवमानिता[1] सुनीति छोड़ पुर,
हो विरक्त वनजाती ॥
विजय पराभव दोनों ही हैं,
मानवता अपकारी ।
भावी क्षय गर्भित जय होती,
परिभव[2] स्फुट[3] क्षयधारी ॥64॥

भोग निरतता सदा स्त्रोत है,
निर्बलता का क्षय का ।
अबलाजन अपमान, धूर्तजन,
लोभ और जन भय का ॥
धन के अपव्यय राजपुरूषकृत,
आश्रित प्रकृति अनय का ॥
और अन्ततः रोग मृत्यु का,
राजवंश के लय[4] का ॥65॥

नहीं दाव पर राज्य लगाने
को कोई अधिकृत है ।
नहीं क्षम्य राजस्व अपहरण
का सुनिंद्य दुष्कृत है ।
राजा से होती न प्रजा सुत
होता नृपति प्रकृति[5] से ।
जन से ही बनता है जनपद
नहीं बलार्थ प्रभृति से ॥66॥

बनो भूमि के पुत्र न भूपति
कहलाने में रस हो ।
राजधर्म का तुम परिपालन
करो सदा समरस हो ।
नहीं व्यक्तिगत स्वत्व राज्य है
दास नहीं जन गण है ।
नृप ही रहो बनो मत नरपति
यह सेवा न रमण है ॥67॥

1. अपमानित	3. स्पष्ट	5. प्रजा
2. पराजय	4. विलीन होना	

कर[1] ग्रहीत वसु[2] में जो करते
अवगाहन नृप वारण[3] ।
पांसुलता भी वही अन्ततः
करते पाण्डव धारण ।
यद्यपि राजा भी करि सम ही
धर्मराज कर साधन ।
है अक्षय यदि कर न सका उस
कर से लोकाराधन ॥68॥
हिम कर[4] सम निज कर[5] से वितरण
यदि न करे नृप षम का ।
तो क्षय पक्ष कला सम क्षय ही
होता उस अक्षम का ।
ज्येष्ठ नहीं वह मात्र ज्येष्ठ[6] वत
अभितापित करने को ।
वसु[7] धरता है सुनृप मेघवत
आप्लावित करने को ॥69॥
यदि अन्यत्र बसे जा जनता
भीत रोष में आकर ।
शासन संभव कहां क्षेत्र की
निर्जनता को पाकर ।
अपने आप नहीं सेना या
कोष निकल आऐंगे ।
नहीं तुंग सपताक[8] दुर्ग पर
बन्दीजन[9] गाएगें ॥70॥
केवल भूमि नहीं होती है, भूपतित्व का हेतु ।
प्रकृति नहीं तो व्यर्थ वाहिनी, राजपुरूष धन केतु[10] ॥71॥
बनो कर्मयोगी अच्युत[11] सम
मम चरित्र अनुसर्ता[12] ।
बनो नहुश, पुरू और भरत से
भूमंडल के भर्ता ।
आन्तर बाह्य उभय अभिरक्षक
जन मन के भय हर्ता ।
गुरूउद्यमनयजनितविपुलधन
से जन जन उपकर्ता ॥72॥

1.टेक्स, सूंड	4. चंद्रमा	7. जल, धन	10. ध्वज
2. धन, जल	5. हाथ, किरण	8. पताका युक्त	11. श्रीकृष्ण
3. हाथी	6. ज्येष्ठ मास	9. चारण, स्तुति गायक	12. अनुसरण करने वाला पालन करने वाला

(सार)

देख रहे हैं अगणित लोचन
तुम्हें बड़ी आशा से ।
करो शासनारम्भ प्रशासन
की नव परिभाषा से ।
बनो सखा गुरू और पिता इस
पीड़ित मानवता के ।
पौंछ अचिर[1] दृगवारि[2] मोद के
स्त्रोत बनो जनता के ॥73॥

अब तक त्रस्त रही जो नरता
लोभ मोह भय मद से ।
कहीं न हो सुविरक्त राज्य से
और नृपति के पद से ।
अत: महोद्यम करो युधिष्ठिर
दृढ़ विश्वास जगाओ
धर्मशास्त्र कीर्तित[3] सुधर्म का
शासन ही तुम लाओ ॥74॥

(दोहा)

भारत प्रति पालो अचिर, हे भारतर् कत्तव्य ।
निर्बलता सब हृदय की, अब है परिहर्तव्य ॥75॥

रहो इला[4] के तुम सदा, स्वामी रक्षक दास ।
भूभृत[5] सम भूभृत[6] रहो, तुंग अटल श्री वास[7] ॥76॥

(सार)

अब रह जाए शब्द शास्त्र तक
परिमित हे सुत विग्रह[8] ।
षड् रिपु[9] का तुम यथा समय पर
करते रहना निग्रह ।
करना अर्जित नित सुकर्म से
प्रत्यय[10] तुम जन-जन का ।
हर कर सब उपसर्ग[11] उन्नयन
करना शुभ कुरू जन का ॥77॥

(सरसी)

माघ सूर्य सम बनो स्वल्पकर[12], यद्यपि हो तनु कोश[13] ।
रण परिणाम त्रस्त जनता में, पहले ही है रोश ॥78॥

1. शीघ्र	5. पर्वत	9. काम, क्रोध, लोभ	12. थोड़ी किरणों वाला,
2. आंसू	6. राजा	मद, मोह और मात्सर्य	थोड़े टेक्स वाला
3. वर्णित, निर्दिष्ट	7. लक्ष्मी का निवास	10. विश्वास	13. थोड़ा कोश
4. पृथ्वी	8. लड़ाई	11. बाधांए	

(सार छंद)

लघु प्राथमिक प्रयास बहुत है
दुर्जन के नियमन को ।
मिल जाता संकेत उचित सा
तूर्ण यहां जन मन को ।
मात्र उपेक्षा से उद्भटता
करता है खल धारण ।
क्रमश: होता जाता दुष्कर
जनपद शूल निवारण ॥79॥

(वियोगिनी वृत्त)

क्षति कारक आत्महीनता इसका त्याग तुरंत ही करो ।
नृप जाकर लोक की हरो तुम पीड़ा रणजा[1] भयावनी ॥80॥

व्यसनातुर[2] राज्य के लिए जनता भीति[3] अनेकधा[4] यहां ।
मदनातुरता बनी कभी नृप श्री वंश विनाशकारिणी ॥81॥

परिचालित नीति से नहीं वह राजा बस भार भूमि का ।
अनयार्जित सम्पदा नहीं सुख देती सुत तथ्य है यही ॥82॥

करना उपकार लोक का तज विस्तार प्रलोभ भूमि का ।
भवभूति[5] विना प्रशास्ति[6] का नृप होता कुछ अर्थ ही नहीं ॥83॥

अपराधित है प्रजा जहां वह नाशोन्मुख देश शीघ्र ही ।
समुदात्त पड़ोस राज्य को बनता स्त्रोत महान कष्ट का ॥84॥

वह हेम किरीट व्यर्थ है जनता हो यदि धान्य के विना।
टिकती वह दीप की प्रभा यदि आधार प्रभूत स्नेह[7] हो॥85॥

परितापित लोक हो जहां बसती रूष्ट वहां न इंदिरा[8] ।
अतएव सुधी[9] सदा करे बहु आयास प्रजार्थ प्रीति के ॥86॥

(सरसी)

व्यसनश्रृंखलाजनक जनाधिप, कृत है व्यसन विशेष ।
करता त्वरित निगीर्ण कीर्ति को, श्री को अचिर अशेष ॥87॥

नर पर होता व्यसनपात तो, दु:ख पाता परिवार ।
नृपदुष्कृतदावानलतापित, होता सब संसार ॥88॥

1. युद्ध से उत्पन्न	5. संसार का कल्याण 9. बुद्धिमान, उत्तम बुद्धि का
2. विपत्ति से पीड़ित	6. प्रशासन
3. भय	7. तेल, प्रेम
4. अनेक बार	8. लक्ष्मी

(दोहा)

अविनय के प्रतिकार को, बढ़े न त्वरित नयज्ञ[1] ।
धर्मज्ञान वह भारवत, ढोता व्यर्थ अभिज्ञ ॥89॥

(सार)

पार्थिव[2] पार्थिवता[3] तक सीमित
हैं अधिसंख्य[4] जगत में ।
जनकादिक सम कर्मयोग रत
राजा हुए विगत में ।
पर नि:श्रेयस[5] सिध्दि अभ्युदय ।
सहित सकल दु:ख भंजन ।
साधारण नृप मात्र सुनिष्चित ।
करता है जनरंजन ॥90॥

(दोहा)

जल अभिषेचन के विना, होता सविधि न यज्ञ ।
शम विरहित होता न नय, पटु जानता न यज्ञ ॥91॥

(सरसी)

निर्मलबहुवसुस्त्रोत[6] शुभ्र हिम,शीतल मुनिवर[7] युक्त ।
उन्नतशीर्ष अभ्युदयकारक, बहुपरितापविमुक्त ।
विपुल वाहिनी[8] धारक दुर्गम, अचल[9] अलंघ्य[10] अमान[11] ।
सेवितद्विजगण[12] सवृष[13] सारमय[14], भूभृत[15] वही महान ॥92॥

(सार)

किया अमित बलिदान युधिष्ठिर
धर्म हेतु नरता ने ।
भरा न यदि यह शून्य तुम्हारी ।
जनहित तत्परता ने ।
तो बहुजन की उठ जाएगी ।
न्याय सत्य से निष्ठा ।
हो जाएगी अतिषय दुष्कर
फिर राजत्व प्रतिष्ठा ॥93॥

1.नीतिज्ञ	5. मोक्ष, परमकल्याण	9. दृढ़ , पर्वत, स्थिर	11. न मापने योग्य	13. बैल युक्त, न्याय युक्त,
2. राजा	6. जल, धन	10. जिसे पार न किया	बिना अभिमान के	पुण्य कार्य युक्त
3. स्थूलता	7. श्रेष्ठ मुनि , मुनि का वर	जा सके , जिसकी	12. पक्षियों से युक्त	14. धातु युक्त , बल युक्त
4. बहुसंख्यक	8. नदी , सेना	आज्ञा का उल्लंघन न	जिसने ब्राह्मणों की सेवा	15. पर्वत, राजा
		किया जा सके	की हो	

सिंहासन पा सकता है नर
भुजबल से या छल से ।
आसनस्थ भी कुछ वर्षों तक
रहता दमन प्रबल से ।
असत्प्रचाराश्रिता भ्रान्ति का
लेकर तुच्छ सहारा ।
करता है कुप्रयास बदलती
नहीं समय की धारा ॥94॥

खण्डित होते स्वप्न भ्रांति का
अभ्र[1] क्रमिक छंटता है ।
लघुतर वृत्तों से जनता का
फिर न ध्यान बंटता है ।
होता तब नेपथ्य अनावृत
अभिनय भी खुलता है ।
प्रकटित प्राकृत[2] रूप लेप भी
कुवदन का धुलता है ॥95॥

प्रकृति[3] कोप से लोक समूचा ।
जैसे कम्पित होता ।
प्रकृति[4] कोप से वैसे नरपति
सद्य: लम्बित[5] होता ।
प्रीति प्रतीति और आस्था ही
जन की पूत त्रिवेणी ।
जिसमें मज्जन कर नृप पाते
चक्रवर्ति की श्रेणी ॥96॥

होती प्रीति गुणों से जगती
दृढ़ प्रतीति कर्मों से ।
लाता है सुफलत्व जनास्था
न्यायाधिक धर्मों से ।
नरगण के मानस में बसता
शुभराजत्व हमारा ।
सत्य न्याय तट मध्य प्रवाहित
हो नय निर्मल धारा ॥97॥

1. मेघ ,बादल	3. निसर्ग	5. नीचे गया हुआ, डूबा हुआ
2. वास्तविक	4. प्रजा	

नहीं दण्ड वह श्लाघ्य[1] बना दे ।
जनपद को ही कारा[2] ।
शम भी है वह निंद्य शठों को
लगे नृपति ही हारा ।
त्वरित सुदण्ड विधान मंत्र है
जन मन अनुशासन का ।
दुर्जन हृदय प्रकम्प जनन भी
है विधेय शासन का ॥98॥

नहीं धर्म का अर्थ बैठना
जा सुदीर्घ अध्वर[3] पर ।
या होना ध्यानस्थ योगिवत
दिव्य अनाहत[4] स्वर पर ।
राजा का है धर्म सर्वदा
यान नीति अध्वन[5] पर ।
क्या ध्रुव होगा रक्ष्य डालता
यदि न दृष्टि गत्वर[6] पर ॥99॥

जब नर गण मानता मित्र गुरू
रक्षक भी शासन को ।
तब मिलता आधार सुदृढ़तर
स्वर्णिम सिंहासन को ।
यदि तुमने कर पाए हर्षित
चिर तक द्विज गो नारी ।
बने रहोगे सही अर्थ में
शासन के अधिकारी ॥100॥

शांति नहीं पा सकते भारत
जाकर भी तुम वन में ।
जबतक हिंसा त्रास वेदना
नर्तन करें भुवन में ।
विपदा होती दूर न बनकर
भीरू[7] पलायन वादी ।
करो सत्य सामना युधिष्ठिर
रहकर दृढ़ अप्रमादी[8] ॥101॥

1. प्रशंसनीय	4. हृदय के समीप स्थित यौगिक	5. मार्ग	7. डरपोक
2. कारागृह	चक्र जिसमें दिव्य ओंकार	6. अस्थिर, चंचल	8. सावधान,
3. यज्ञ	ध्वनि उठती है	चलायमान	सतर्क